



अर्बन नक्सलवाद

GAJENDRA KUMAR MALVIYA

H.O.D., ASSOCIATE PROFESSOR, SOCIOLOGY DEPARTMENT,
GOVT. PG COLLEGE, JHALAWAR, RAJASTHAN

सार

शहर में रहने वाला वह वर्ग जो पत्रकार, कवि, लेखक, बुद्धिजीवी, मानवाधिकार कार्यकर्ता, संस्कृतिकर्मी, नारीवादी के रूप को अपनी ढाल बनाकर माओवादी गतिविधियों में संलग्न है या प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से माओवादियों नक्सलियों को सहायता पहुँचा रहे हैं, उन्हें ही अर्बन नक्सल कहा जा रहा है। इसमें मुख्य रूप से बुद्धिजीवी कहे जाने वाले समाज का वो बड़ा हिस्सा भी शामिल है जो हमेशा खुद को निष्पक्ष और तटस्थ दिखाने का प्रयास करता रहा है। नक्सलवाड़ी और वहाँ से निकले नक्सलवाद को तो सभी ने देखा है, उसकी कमियों और करतूतों को भी विस्तार से समझा और समझाया गया है, लेकिन नक्सलवाद के शहरी विस्तार और उसकी कार्यपद्धति हमेशा से रहस्यमयी रही है। हालांकि बीच-बीच में ऐसे बहुत से उदाहरण मिलते रहें हैं कि किस तरह नक्सलवाद शहरी क्षेत्र के सहयोग से अपना विस्तार कर रहा है लेकिन इस विषय पर किसी तरह का कोई गहन अध्ययन या विश्लेषण नहीं किया गया है। यही वजह है कि जब देश में माओवाद समर्थकों को "अर्बन नक्सल" कहा गया तो वामपंथियों द्वारा चलाये गए "मी टू अर्बन नक्सल" कैम्पेन में कुछ हद तक युवावर्ग का वह हिस्सा भी शामिल था जो तटस्थ माना जाता है।

परिचय

माओवादियों के शहरी मायाजाल की असली रूपरेखा 2004 में तैयार की गई थी। भारत में नक्सल हिंसा की शुरुआत के बाद 80 के दशक से ही बौद्धिक क्षेत्र में नक्सलवाद ने पैर पसारने शुरू कर दिए थे। शिक्षण संस्थानों से लेकर सामाजिक और प्रभावशाली संस्थाओं पर कब्जा जमाना शुरू किया। 2004 में सीपीआई (मार्क्सवादी-लेनिनवादी), पीपल्स वॉर ग्रुप (पीडब्ल्यूजी) और माओवादी कम्युनिस्ट सेंटर के विलय के साथ कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (माओवादी) का गठन किया गया। सीपीआई (माओवादी) के गठन के बाद से ही नक्सलवाद का नेतृत्व जंगल से निकल कर शहर की ओर आया। एक समय जहाँ नक्सलियों का केंद्र और उसका नेतृत्व जंगलों में होता था वो अब शहरी क्षेत्रों में आ चुका था। 2004 में सीपीआई (माओवादी) का एक दस्तावेज सामने आया। इस दस्तावेज के सामने आने से यह बातें सामने आई कि नक्सलवाद अपने शहरीकरण के लिए कितना उत्साहित है और अपना विस्तार महानगरों तक करना चाहता है। नक्सलवाद की विचारधारा वामपंथ की ही है, जिसकी वजह से वैश्विक स्तर पर वामपंथ के सहयोगियों द्वारा भारत में भी अनेक स्तरों पर नक्सलियों की मदद पहुँचाई गई। 2004 में आये दस्तावेज 'सीपीआई (माओवादी) अर्बन पर्सपेक्टिव' में शहरों में नक्सलवाद के विस्तार की रणनीति पर चर्चा की गई थी। जंगल से निकल शहरों में नक्सलवाद के नेतृत्व तलाशने को लेकर कोशिश करने की बात इसमें कही गई थी। मिडिल क्लास कर्मचारी, छात्र

वर्ग, कामकाजी वर्ग, महिला, दलित वर्ग, धार्मिक अल्पसंख्यक और समाज के कुछ प्रतिष्ठित बुद्धिजीवी वर्ग को अपनी विचारधारा से जोड़ने और शहर में समूह खड़ा करने का प्रयास करने की बातें भी उस दस्तावेज से सामने आई थी। इस दस्तावेज में शहरी क्षेत्र में शहरी नेतृत्व और विशेषज्ञता के साथ-साथ औद्योगिक श्रमिकों और मजदूरों को संगठित करने, अलग-अलग मोर्चे स्थापित करने और सैन्य गतिविधियों में जोर देने को भी शामिल किया गया था। चूँकि कुछ मामले कानूनी दावपेंच से फँसे होते हैं इसीलिए इससे जुड़े अग्रणी संस्थानों को ज्यादातर मानवाधिकार और गैर-सरकारी संगठन के चेहरे के साथ काम करते देखा जा सकता है। सीपीआई (माओवादी) पार्टी और उससे जुड़े सभी संगठनों आतंवादी संगठन के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। इसके बावजूद कुछ अग्रणी संगठन जो नक्सलवाद का समर्थन करते हैं वो दिल्ली, मुम्बई, रांची, हैदराबाद, चंडीगढ़, तिरुवनंतपुरम और पुणे जैसे छोटे-बड़े शहरों में काफी सक्रिय हैं। अगर अब हम ध्यान से समझे तो यह स्पष्ट नज़र आता है कि किस तरह नक्सलवाद का नेतृत्व जंगलों से निकल कर अब शहरों में आ चुका है। संसाधनों की पूर्ति से लेकर दिशा-निर्देश शहरों से हो रहा है। पुलिस ने समय समय पर देश के विभिन्न क्षेत्रों से कला, शिक्षा, साहित्य, मीडिया, कानून के क्षेत्र से जुड़े हुए ऐसे लोगो को गिरफ्तार किया है जो सीधे तौर पर नक्सल गतिविधियों में शामिल रहें हैं। जब हम नक्सलवाद के शहरी परिपेक्ष्य और सीपीआई (माओवादी) के शहरीकरण की बात कर रहें हैं तो इसके मूल को जानना बेहद आवश्यक है। आखिर कैसे शहरों में बैठा एक साहित्यकार या पत्रकार नक्सलियों की मदद कर सकता है? आखिर कैसे एक मानवाधिकार कार्यकर्ता नक्सलियों की आवाज़ उठा सकता है? इसके लिए हमें भारत के माओवाद को समझना जरूरी है। माओवाद को समझने के लिए माओ को समझना जरूरी है। माओ का तात्पर्य है माओ-त्से-तुंग (माओ ज़ेडोंग) से। चीन का एक कम्युनिस्ट नेता जो बाद में निरंकुश तानाशाह बना। माओ के द्वारा लिए गए फैसलों को भारत में बैठे वामपंथी अपनाने की पूरी कोशिश करते हैं। भारत का नक्सलवाद माओ ज़ेडोंग की रणनीति का हुबहू नकल है। भारत में अर्बन नक्सल पर तरह-तरह के विश्लेषण किए जाते हैं लेकिन इन गतिविधियों को माओ ज़ेडोंग की गतिविधियों से जोड़कर नहीं देखा जाता। दरसअल 1934 में माओ ज़ेडोंग द्वारा निकाली गई पद यात्रा (द लॉन्ग मार्च) और उस दौरान उसकी रणनीतियों को आज के समय में दोहराया जा रहा है। 1934 में चीन की साम्यवादी सेना ने स्थापित सरकार से बचने के लिए एक लंबी यात्रा की थी। यह सेना आज के समय के माओवादियों की तरह ही शासन के विरुद्ध कार्य कर गुरिल्ला वॉर कर रही थी। इस लंबे मार्च का नेतृत्व माओ ज़ेडोंग ने किया था। 370 दिनों की इस यात्रा में माओ और कम्युनिस्ट सेना के लोगों ने लगभग 22 नदियों और कई पहाड़ों को पार किना था। अंततः यह मार्च सफल हुआ था। इस मार्च के सफल होने का सबसे प्रमुख कारण यह था कि माओ ज़ेडोंग ने अपने से जुड़े कुछ लोगों को देश के अलग-अलग मीडिया समूहों और साहित्य जगत में शामिल कर रखा था। कुछ समय अंतराल में सरकार के तरफ से की जाने वाली गतिविधियों की सूचना और अन्य सूचनाओं को देने लिए इनका इस्तेमाल किया गया। जानकारी को लेखों और साहित्य के माध्यम से इन तक पहुँचाया जाता था। इसी तरह माओ ज़ेडोंग ने अपने पूरे मार्च के दौरान अखबारों और साहित्य का भरपूर उपयोग किया। अब वर्तमान में हो रही गतिविधियों को ध्यान से देखिए। नक्सलियों तक हर समय अंतराल में देश के विभिन्न भाषाओं के प्रतिष्ठित अखबार पहुँचाए जाते हैं। अनेकों तरह की पत्रिकाएं इस संबंध में प्रकाशित की जाती हैं। कानूनन नक्सल साहित्य रखना और पढ़ना जरूर गुनाह है लेकिन आज के इस डिजिटल युग में संचार के माध्यमों की कमी नहीं है। जिस समय में सोशल मीडिया

जैसा भी कुछ नहीं था तब माओ ज़ेडोंग ने वामपंथ के शहरीकरण की मदद से अपने सशस्त्र विद्रोह और गोरिल्ला वॉर को भी दुनिया के सामने क्रांति के रूप में पेश किया था। आज तो फिर भी इन कथित क्रांतिकारियों के पास अकूत संसाधन और संचार के विकल्प मौजूद हैं।

विचार-विमर्श

यह सब परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से एक ऐसी विचारधारा का प्रचार करते हैं जो नक्सलवाद को बढ़ावा देती है। नक्सलवाद के प्रति जो घृणा है उसे निकाल कर उसके प्रति सांत्वना पैदा करने की कोशिश करती है। लेकिन सवाल अब भी यही है कि ये ऐसा क्यों करते हैं? कुछ कहते हैं कि ये सबकुछ पैसे के लिए करते हैं, लेकिन ऐसा नहीं है। हाँ यह बिल्कुल सही है कि इनमें एक वर्ग ऐसा भी है जो यह सारी गतिविधियाँ पैसे के लिए करता है लेकिन कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें पूरी तरह ब्रेनवॉश कर दिया जाता है। देश के बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों में प्रोफेसर और कार्यकर्ता के रूप में बैठे वामपंथी विचारक (अर्बन नक्सल) धीमे-धीमे अपने विद्यार्थियों को वामपंथ का मीठा जहर देते हैं। छोटे शहरों से आये गरीब और मध्यमवर्गीय युवा इनके केंद्र में रहते हैं। इनका इस प्रकार से ब्रेनवॉश किया जाता है कि उन्हें खुद मालूम नहीं होता कि वह किस दिशा में जा रहे हैं। यही बड़े विश्वविद्यालयों से लेकर बस्तर और त्रिपुरा जैसे क्षेत्रों के छोटे-छोटे जनजाति क्षेत्रों में भी सामाजिक कार्यकर्ता और प्रोफेसर के रूप में बैठे वामपंथी ना सिर्फ अपने छात्रों और जनजाति समाज के लोगों का ब्रेनवॉश करते हैं बल्कि उनका शोषण भी करते हैं। ऐसी कई घटनाएं सामने आ चुकी है जब पुलिस द्वारा गिरफ्तार और आत्मसमर्पित नक्सलियों ने शहरों में बैठे ऐसे स्वघोषित बुद्धिजीवियों के नक्सल गतिविधियों में संलिप्त होने की बात को स्वीकारा है जिसमें दिल्ली विश्वविद्यालय की प्रोफेसर और जाने माने कथित सामाजिक कार्यकर्ता भी शामिल हैं। हालांकि एक बात तो स्पष्ट नज़र आ रही है कि देश में नक्सलवाद और वामपंथ के प्रति काफी जागरूकता आई है। लेकिन उस इकोसिस्टम का प्रयारा अभी भी जारी है कि नक्सलियों और शहरी नक्सलियों को एक्टिविस्ट ही कहा जाए। नक्सलियों की मदद करने वालों को पुलिस और कानून से बचाने के लिए कैम्पेन चलाया जाए। लेकिन जिस गति वामपंथ और नक्सलवाद का शहरी रूप उजागर हो रहा है वह दिन दूर नहीं है कि देश में बैठे अर्बन नक्सलियों के चेहरे का नकाब उतर कर सबके सामने आ जाएगा।

परिणाम

इन दिनों अर्बन नक्सल यानी शहरी नक्सल नाग का मुहावरा काफी इस्तेमाल में आ रहा है। किताब से लेकर लेखों और टीवी बहसों की एक पूरी श्रृंखला इसके इर्द-गिर्द रची जा रही हैं। भारत के कई शहरों में वकीलों, लेखकों, मानवाधिकार और सामाजिक कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारियां हुई हैं, जिन्हें मीडिया के एक हिस्से में अर्बन नक्सल कह कर संबोधित किया जा रहा है। हालांकि सरकार या सरकारी एजेंसियों की तरफ से अर्बन नक्सल को लेकर आधिकारिक रूप से कोई बयान नहीं आया है।

फिर भी, अर्बन नक्सल नाम की इस बला को समझना कई वजहों से जरूरी है। आम लोगों की बात तो दूर है, जो लोग धड़ल्ले से इसका इस्तेमाल कर रहे हैं उन्हें भी शायद ही इसकी समझ है। यह बात भारत में मार्क्सवाद और नक्सलवाद का कोई भी अध्येता बड़े ही आत्मविश्वास से कह सकता है।

सार्वजनिक दायरे में जितनी जानकारी उपलब्ध है, उसके आधार पर यह लगता है कि अर्बन नक्सल नाम का यह मुहावरा अर्द्धशिक्षित और अपढ़ भारतीय दक्षिणपंथ और उतनी ही अर्द्धशिक्षित और अपढ़ दक्षिणपंथी या सत्ता समर्थक मीडिया की दिमागी उपज है।

पहले जानते हैं कि नक्सल क्या है, बाद में हम उसके शहरी या ग्रामीण पक्ष पर आएं। 1967 में पश्चिम बंगाल के एक गांव नक्सलबाड़ी में जमींदारों के खिलाफ हथियारबंद आंदोलन हुआ था। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) यानी सीपीएम से बाद में इसी सवाल पर अलग हुए एक धड़े ने चारु मजूमदार के नेतृत्व में यह संघर्ष चलाया था। उनका साफ मानना था कि सीपीएम अपने राजनीतिक मकसद से भटक चुकी है और उन्होंने यह अलग रास्ता अपनाया था। बाद में नक्सलबाड़ी आंदोलन का दमन हो गया, लेकिन कई कम्युनिस्टों ने उस आंदोलन में अपनी आस्था जताते हुए अलग-अलग कम्युनिस्ट पार्टियों या समूहों का गठन किया। वे खुद को नक्सलवादी धारा से जुड़ा मानते थे, इसलिए उन्हें नक्सल कहा गया। हालांकि हथियारबंद संघर्ष से ऐसे ज्यादातर समूह या तो दूर रहे या फिर उन्होंने बाद में इसे कारगर नहीं मानते हुए छोड़ दिया। जहां तक शहर या गांव का सवाल है तो नक्सलबाड़ी आंदोलन के समय और उसके बाद भी शहरों में रहने वाले छात्र-युवाओं, मजदूरों और बुद्धिजीवियों का आंदोलन को समर्थन प्राप्त था। इसलिए अर्बन नक्सल या रूरल (ग्रामीण) नक्सल का सवाल नहीं उठता और अगर ऐसा है तो यह शुरू से है।

अब आते हैं इस मुहावरे के दूसरे पहलू पर। शहर में रहने वाले तमाम किस्म के लोग जो (मौजूदा) सत्ता का विरोध कर रहे हैं, उन्हें अर्बन नक्सल या उनका समर्थक कहा जा रहा है। इनमें तरह-तरह के मार्क्सवादी, समाजवादी, उदारवादी, मानवाधिकारवादी, पत्रकार, लेखक, वकील और यहां तक कि कांग्रेस और दक्षिणपंथ से जुड़े कुछ लोग भी शामिल हैं। यहां यह जानना जरूरी हो जाता है कि मार्क्सवादियों के एक हिस्से को छोड़कर शायद ही इनमें से कोई और नक्सलबाड़ी आंदोलन का समर्थन करता है। फिर यह पूछना भी जरूरी हो जाता है कि कैसे उन्हें अर्बन नक्सल या नक्सल कहा जाए? भारत में मार्क्सवादियों की ही कई प्रजातियां हैं और शायद उससे थोड़ी ही कम नक्सलवादियों की होंगी। और उनमें आपसी सहमति से ज्यादा मतभेद ज्यादा हैं और अतीत में तो काफी तीखे मतभेद रहे हैं जो 80 और 90 के दशक के अखबारों के पन्नों में दर्ज हैं।

निष्कर्ष

नक्सलवाद की उत्पत्ति के कारण

नक्सलियों का कहना है कि वे उन आदिवासियों और गरीबों के लिये लड़ रहे हैं, जिनकी सरकार ने दशकों से अनदेखी की है। वे ज़मीन के अधिकार एवं संसाधनों के वितरण के संघर्ष में स्थानीय सरोकारों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

माओवाद प्रभावित अधिकतर इलाके आदिवासी बहुल हैं और यहाँ जीवनयापन की बुनियादी सुविधाएँ तक उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन इन इलाकों की प्राकृतिक संपदा के दोहन में सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र की कंपनियों ने कोई कमी नहीं छोड़ी है। यहाँ न सड़कें हैं, न पीने के लिये पानी की व्यवस्था, न शिक्षा एवं स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएँ और न ही रोज़गार के अवसर।

नक्सलवाद के उभार के आर्थिक कारण भी रहे हैं। नक्सली सरकार के विकास कार्यों के कार्यान्वयन में बाधा उत्पन्न करते हैं। वे आदिवासी क्षेत्रों का विकास नहीं होने देते और उन्हें सरकार के खिलाफ भड़काते हैं। वे लोगों से वसूली करते हैं एवं समांतर अदालतें लगाते हैं। प्रशासन तक पहुँच न हो पाने के कारण स्थानीय लोग नक्सलियों के अत्याचार का शिकार होते हैं।

अशिक्षा और विकास कार्यों की उपेक्षा ने स्थानीय लोगों एवं नक्सलियों के बीच गठबंधन को मज़बूत बनाया है।

सामाजिक विषमता ही वर्ग संघर्ष की जननी है। आज़ादी के बाद भी इस विषमता में कोई कमी नहीं आयी। नक्सलियों के लिये यह एक बड़ा मानसिक हथियार है।

शासन की जनहित के लिये बनने वाली योजनाओं के निर्माण एवं उनके क्रियान्वयन में गंभीरता, निष्ठा व पारदर्शिता का अभाव रहता है जिससे वंचितों को भड़काने और नक्सलियों की नई पौध तैयार करने के लिये इन माओवादियों को अच्छा बहाना मिल जाता है।

आम जनता को अब यह समझ में आने लगा है कि सत्ता के केंद्र में बैठे लोगों में न तो सामाजिक विषमतायें समाप्त करने, न भ्रष्टाचार को प्रश्रय देना बंद करने और न ही नक्सली समस्या के उन्मूलन के प्रति लेशमात्र भी राजनीतिक इच्छाशक्ति है। आर्थिक घोटालों के ज्वार ने नक्सलियों को देश में कुछ भी करने की मानसिक स्वतंत्रता प्रदान कर दी है।

सरकार द्वारा किये जा रहे प्रयास

आमतौर पर कानून-व्यवस्था राज्य सूची का विषय होता है यानी राज्य में कानून और व्यवस्था बनाए रखने का काम संबंधित राज्य का होता है। लेकिन नक्सलवाद की विकटता को देखते हुए वर्ष 2006 में तत्कालीन प्रधानमंत्री ने इसको राष्ट्र की आंतरिक सुरक्षा के लिये सबसे बड़ी चुनौती बताया। उसके बाद गृह मंत्रालय में नक्सलवाद की समस्या से निपटने के लिये एक अलग प्रभाग बनाया गया।

सरकार वामपंथी चरमपंथ से प्रभावित क्षेत्रों में बुनियादी ढाँचे, कौशल विकास, शिक्षा, ऊर्जा और डिजिटल कनेक्टिविटी के विस्तार पर काम कर रही है।

सरकार वामपंथी अतिवाद से प्रभावित क्षेत्रों में सड़कें बनाने की योजना पर तेज़ी से काम कर रही है और वर्ष 2019 तक 48,877 किमी. सड़कें बनाने का लक्ष्य रखा गया है।

वर्ष 2013 में आजीविका योजना के तहत 'रोशनी' नामक विशेष पहल की शुरुआत की गई थी ताकि सर्वाधिक नक्सल प्रभावित जिलों में युवाओं को रोज़गार के लिये प्रशिक्षित किया जा सके। वर्ष 2017 में नक्सल समस्या से निपटने के लिये केंद्र सरकार ने आठ सूत्रीय 'समाधान' नाम से एक कार्ययोजना की शुरुआत की है।

संदर्भ

वामपंथी उग्रवाद, भारत'। दक्षिण एशिया १) माओवादी कम्युनिस्ट सेंटर आतंकवाद पोर्टल । मूल से 12 फरवरी 2012 को संग्रहीत। 21 मई 2014 को लिया गया।

2) जे. वेंकटेशन. "सलवा जुडूम अवैध है, सुप्रीम कोर्ट ने कहा" द हिंदू मूल से 29 अक्टूबर 2013 को संग्रहीत 16 अगस्त 2019 को लिया गया.

3) नम्रता गोस्वामी (27 नवंबर 2014)। भारतीय राष्ट्रीय सुरक्षा और आतंकवाद विरोधी: बल प्रयोग बनाम अहिंसक प्रतिक्रिया। रूटलेज। पीपी. 126-आईएसबीएन 978. 1-134-51431-1.

4) "रणवीर सेना हत्याकांड में नया मोड़। द हिंदू। 20 जून 2000 मूल से 30 अप्रैल 2018 को संग्रहीत । 25 दिसंबर 2017 को लिया गया।

5) नरूला, स्मिता (1999). टूटे हुए लोग: भारत के "अछूतों" के खिलाफ जातिगत हिंसा । ह्यूमन राइट्स वॉच ऑर्गनाइजेशन। पी. 53. आईएसबीएन 978-1-564-32228-9. मूल से 25 दिसंबर 2017 को पुरालेखित अभिगमन तिथि 24 दिसंबर 2017.

6) "झारखंड मुठभेड़ में माओवादी ढेर, जगुआर अधिकारी घायल'। द न्यू इंडियन एक्सप्रेस । 11 सितंबर 2019 मूल से 13 सितंबर 2019 को संग्रहीत । 1 जून 2019 को लिया गया।

7) "सीएमपीडीआई अधिकारियों से लेवी मांगने के आरोप में पीपुल्स लिबरेशन फ्रंट ऑफ इंडिया के 3 सदस्य गिरफ्तार' । द डेक्कन हेराल्ड । 2 सितंबर 2019 | 1 जून 2019 को लिया गया।

- 8) "आरसीसी से जुड़ी घटनाएं और बयान"। दक्षिण एशिया आतंकवाद पोर्टल। मूल से 11 जुलाई 2019 को संग्रहीत। 1 जून 2019 को लिया गया।
- 9) माओवादी विद्रोह: ओडिशा माओवादी पार्टी (ओएमपी) से जुड़ी घटनाएं और बयान: 2015"। दक्षिण एशिया आतंकवाद पोर्टल। मूल से 7 अगस्त 2019 को संग्रहीत। 1 जून 2019 को लिया गया।
- 10) "सीपीयूएसआई से जुड़ी घटनाएं"। दक्षिण एशिया आतंकवाद पोर्टल। 1 जून 2019 को लिया गया।
- 11) वी. वेंकटेशन (22 अप्रैल 2010)। "क्या राज्यपाल बिना कारण बताए सहमति नहीं दे सकते?". फ्रंटलाइन मूल से 13 अक्टूबर 2018 को संग्रहीत। 21 मई 2014 को लिया गया।
- 12) "तमिलनाडु लिबरेशन आर्मी (TNLA)" दक्षिण एशिया आतंकवाद पोर्टल। 1 जून 2019 को लिया गया।
- 13) "पाकिस्तान और भारत में नक्सलवादी आंदोलन। स्ट्रैटफोर। 18 नवंबर 2010. मूल से 30 मार्च 2018 को संग्रहीत। 1 जून 2011 को लिया गया।
- 14) "अंतर्राष्ट्रीय कार्रवाई का आह्वान: 'जो व्यक्ति हजारों घावों से मरने से नहीं डरता, वह सम्राट को घोड़े से उतारने का साहस करता है" सीआईआईसी 25 अप्रैल 2019. मूल से 22 मई 2019 को संग्रहीत 1 जून 2019 को पुनःप्राप्त.
- 15) स्टीवर्ट-इंगर्सॉल, रॉबर्ट (2012)। क्षेत्रीय शक्तियाँ और सुरक्षा आदेश। रूटलेज।
- पृष्ठ 2401 16) अल लबीता (22 अप्रैल 2010)। 'फिलीपीन रेड्स सशस्त्र संघर्ष का निर्यात करते हैं
- । एशिया टाइम्स। मूल से 14 अप्रैल 2012 को संग्रहीत। 21 मई 2014 को लिया गया।
- 17) "बांग्ला माओवादी पीएम को निशाना बनाने की योजना में शामिल हैं"। संडे गार्जियन। 9 जून 2018। मूल से 7 सितंबर 2018 को संग्रहीत। 7 सितंबर 2018 को लिया गया।
- 18) पुरबा बांग्ला कम्युनिस्ट पार्टी (PBCP), दक्षिण एशिया आतंकवाद पोर्टल"। दक्षिण एशिया आतंकवाद पोर्टल। मूल से २८ अप्रैल २०१६ को संग्रहीत। 1 जून 2019 को लिया गया।
- 19) सिंह, प्रकाश (1999). भारत में नक्सलवादी आंदोलन रूपा एंड कंपनी, पृ. 24.
- 20) "भारत में माओवादी हिंसा क्यों कम हो गई है?"। डीडब्ल्यू-टीवी। 1 मई 2019। मूल से 4 अप्रैल 2019 को संग्रहीत। 1 जून 2019 को लिया गया।